A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 02, July-December, 2025

भारतीय लोकगीतों में प्रकृति का स्वर

Dr Amrita Mishra
Assistant Professor, Music (Vocal), Mahila P.G. College, Bahraich

OPEN ACCESS

सारांश

भारतीय लोकगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं हैं, बल्कि वे मनुष्य और प्रकृति के बीच स्थापित उस अदृश्य संवाद के जीवित साक्ष्य हैं, जिसमें भावनाएँ, संवेदनाएँ और जीवन-दर्शन एकाकार होते हैं। ग्रामीण परिवेश से उपजे ये गीत ऋतु-चक्र, कृषि-जीवन, पशु-पक्षियों की गतिविधियों और प्राकृतिक ध्वनियों के साथ गहराई से जुड़े रहे हैं। फसल कटाई का उल्लास हो, वर्षा की प्रतीक्षा का आतुर मन हो या वसंत ऋतु की रंगीन छटा—लोकगीत हर भाव को अपनी भाषा और सुरों में जीवंत कर देते हैं। कजरी, चैती, फगुआ, बिरहा, मांड या बाऊल जैसी शैलियों में प्रकृति केवल दृश्यात्मक पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि भावनात्मक और सांस्कृतिक चेतना का केंद्रबिंदु बनकर उभरती है। विश्लेषणात्मक दृष्टि से देखा जाए तो लोकगीत भारतीय समाज के सांस्कृतिक मानस का दर्पण हैं। इनमें प्रकृति के प्रति गहरा आदर और आत्मीय लगाव झलकता है। ये गीत न केवल सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करते हैं, बल्कि पर्यावरण के साथ संतुलित सह-अस्तित्व का संदेश भी देते हैं। आधुनिक समय में जब जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संकट मानवता के सामने गंभीर चुनौती बनकर खड़े हैं, तब लोकगीत हमें स्मरण कराते हैं कि हमारी सांस्कृतिक परंपराएँ सदैव पर्यावरण-संवेदनशील रही हैं। लोकगीतों में निहित यह चेतना आज की पीढ़ी को यह सोचने के लिए प्रेरित कर सकती है कि प्रकृति का सम्मान और संरक्षण केवल पारिस्थितिकी की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक निरंतरता और मानव जीवन की स्थिरता के लिए भी आवश्यक है। इस प्रकार, भारतीय लोकगीत हमें यह बोध कराते हैं कि मनुष्य और प्रकृति का रिश्ता केवल उपभोग और उपयोग का नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व, सामंजस्य और संवेदनशीलता का है। यही भाव लोकगीतों को न केवल कलात्मक और सांस्कृतिक धरोहर बनाता है, बल्कि उन्हें आधुनिक पर्यावरणीय विमर्श में भी प्रासंगिक और प्रेरणास्रोत बना देता है।

मुख्य शब्द: *भारतीय लोकगीत, प्रकृति, ऋतुगीत, लोकसंस्कृति, पर्यावरण चेतना, सांस्कृतिक पहचान, जीवन-दर्शन*

प्रस्तावना

"लोक संगीत 'लोक' तथा 'संगीत' इन दो शब्दों के संयोग से बना है। 'लोक' का अर्थ है जन साधारण और 'संगीत' गायन, वादन तथा नृत्य का मिश्रित रूप है अर्थात् जो संगीत जन साधारण द्वारा गाया जाये वह लोक संगीत कहलाता है। लोक संगीत जन-जीवन की उल्लासमय अभिव्यक्ति है।"1

"जगत में नाम एवं रूपमय जो कुछ दिखाई देता है, 'लोक' है। और "ऐसा कोई भी गीत जिसका उद्गम लोक में हो और जो परम्परागत रूप से बाद के लोगों को मिला हो, लोकगीत कहलाता है।"[2] लोकगीत केवल गाने या मनोरंजन की वस्तु नहीं हैं, बल्कि वे समाज के सांस्कृतिक मानस के दर्पण हैं। खेतों में काम करते समय, त्योहारों पर, विवाह और जन्म के अवसर पर या विरह और पीड़ा के क्षणों में—लोकगीत वह माध्यम हैं जिनसे लोग अपनी भावनाओं को प्रकृति से जोड़कर गाते हैं।

भारत को "ऋतुओं का देश" कहा जाता है। यहाँ का ग्रामीण जीवन, कृषि व्यवस्था और सांस्कृतिक उत्सव सभी प्रकृति से सीधे जुड़े हुए हैं। लोकगीत इन्हीं संवेदनाओं और अनुभवों की अभिव्यक्ति हैं। प्रकृति इन गीतों में पृष्ठभूमि भर नहीं, बल्कि एक जीवंत पात्र है—कभी प्रियतम, कभी माँ, कभी देवी और कभी जीवन की सखी। सावन की फुहारें जब झूले के गीतों में उतरती हैं, तो वे केवल ऋतु का वर्णन नहीं करतीं, बल्कि जीवन के उल्लास और पीड़ा को एक साथ समेट लेती हैं।

श्री रामनरेश त्रिपाठी जी के शब्दों में- "ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं, इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे गान ही ग्राम गीत हैं।"[3]

ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

भारतीय लोकगीतों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि भारतीय सभ्यता। जब लिखित साहित्य का कोई निश्चित स्वरूप नहीं था, तब जीवन के अनुभव, धार्मिक विश्वास और सामाजिक संवेदनाएँ गीतों के माध्यम से ही पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती थीं। इस दृष्टि से लोकगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं रहे, बल्कि वे मौखिक परंपरा के माध्यम से संस्कृति और इतिहास के जीवित दस्तावेज़ भी बने।

"आदि काल में जबकि सामाजिक चेतना विकास की ओर गतिशील थी, उस समय सहज ही ऐसी कविता का जन्म हुआ, जिनका जीवन से सीधा संपर्क था। सामाजिक तत्व को व्यक्त करनेवाले लोक-गीत मानव की अकर्मण्यता को दूर करने एवं श्रम-परिहार के हेतु सदैव ही मूल्यवान सिद्ध हुए है। इन गीतों में सुखी जीवन और अच्छी उपज की कल्याणमयी भावनाएं हैं। लोक-गीतों का यह क्रम समय की अटूट लहर के सहारे लोक-संगीत के परंपरागत स्वरों में बंधा हुआ आगे बढ़ता गया। आज भी यही क्रम चल रहा है और आगे भी मानव की सहज चेतना की बाँह थामे चलता रहेगा।"[4]

1. वैदिक और प्राचीन परंपरा

ऋग्वेद के सूक्तों में सूर्य, अग्नि, वायु, नदी, आकाश और वर्षा की स्तुति हमें मिलती है। ये स्तुतियाँ आगे चलकर लोकभाषा और लोकधुनों में बदलकर लोकगीतों का आधार बनीं। वैदिक ऋषियों ने प्रकृति को देवत्व दिया और सामान्य जन ने इन देवताओं को अपने लोकजीवन के गीतों में रूपांतरित किया। उदाहरण के लिए, वर्षा ऋतु के गीतों में इंद्र देवता की महिमा गाई जाती थी, वहीं नदियों को माँ और जीवनदायिनी शक्ति के रूप में पुकारा जाता था।

"वैदिक युग में भी पर्वों के अवसरों पर मनोहर गाथाओं के गाने का निर्देश वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। 'मैत्रायणी संहिता' (3।7।3) में विवाह के अवसर पर गाथा गाने की विधि उल्लिखित है। 'पारस्कर-गृह्यसूत्र' (1 कांड, 7 कंडिका) में विवाह के अवसर पर और 'आश्वलायन-गृह्यसूत्र' में सीमन्तोन्नयन के समय वीणा पर गाथा (गीत) गाने का प्रबलन निर्दिष्ट है। अतः विवाह के समय वैदिक काल में स्त्रियाँ सुन्दर गाथाएँ गाती थीं और वह परंपरा आज भी अक्षुण्ण रीति से चल रही है।"[5]

2. कृषि-आधारित समाज और लोकगीत

भारतीय समाज का मूल आधार सदैव कृषि रहा है। खेत, फसल, वर्षा और ऋतु-परिवर्तन सीधे-सीधे ग्रामीण जीवन को प्रभावित करते रहे हैं। यही कारण है कि लोकगीतों में अधिकतर छवियाँ कृषि-जीवन से जुड़ी दिखाई देती हैं।

"मध्य-भारत के हमेशा से लहराते हुए खेत, सरिता का मधुर संगीत, आम्र-कुंजों की सघनता, फागुन के पलाश की अनुरागमयी लालिमा और वैशाख में गुलमोहर व अमलतास की ललक एवं खलिहानों व कुजों में मादकता का प्रसार करनेवाले प्राकृतिक उपकरण अपने-आपमें भरे-पूरे हैं। ऋतुएँ आती हैं और अपने साथ गीतों की शिप्रा, चंबल, बेतवा और काली सिंध बहाती लाती है। मेंड़ों पर किसान अपनी पगड़ी सम्हालकर कंठ को संवारता है, लाजवंती मालविकाओं की वाणी में जादू उतर आता है और पगों में ठुमकन भर जाती है।मध्य-भारत के गाँव-गाँव में सामूहिक लोक-संगीत के स्वर उठने लगते हैं।"[6]

पूर्वांचल की कजरी में सावन की वर्षा और हरियाली का उल्लास मिलता है।

राजस्थान के लोकगीतों में रेगिस्तानी जीवन का संघर्ष और पेड़-पौधों की कठोरता झलकती है।

इन सबमें प्रकृति केवल दृश्य या पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि जीवन की धुरी है।

3. त्योहार और प्रकृति का संगम

"लोकगीत विभिन्न उत्सवों और ऋतुओं में गाये जाते हैं। विद्वानों ने चिन्तन मनन के पश्चात् लोकगीतों के संस्कार सम्बन्धी गीत, ऋतु सम्बन्धी गीत, व्रत सम्बन्धी गीत, जाति सम्बन्धी गीत, श्रम गीत, देवी देवताओं के गीत आदि का उल्लेख किया है।"[7]

भारत के त्योहार सीधे-सीधे ऋतु और प्राकृतिक चक्र से जुड़े हुए हैं।

होली वसंत का उत्सव है जिसमें फूल, रंग और आम के बौर गीतों का हिस्सा बनते हैं।

दीवाली फसल कटने के बाद सम्पन्नता और उजाले का पर्व है।

मकर संक्रांति सूर्य की गति और ऋतु-परिवर्तन का उत्सव है।

इन अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीत प्रकृति की लय से ताल मिलाते हैं। उदाहरण के लिए, फगुआ गीतों में आम की डाल पर झूला, रंगों की वर्षा और खेतों की हरियाली का जिक्र मिलता है।

4. नारी और प्रकृति का संबंध

"लोकगीतों में प्रायः नारी हृदय का स्वर प्रस्फुटित हुआ है। नारी जीवन पर ध्यान जाना स्वाभाविक ही है। लोकगीत अनुरंजनात्मक हैं, लोकगीतों में महिला विनोद की तीव्र रसधारा प्रवाहित है।"[8]

ग्रामीण स्त्रियाँ प्रायः अपने सुख-दुःख को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करती हैं।इन गीतों में विवाह गीत,विरह गीत,मातृत्व गीत आदि प्रमुख हैं।

5. क्षेत्रीय विविधता और प्रकृति

भारत की भौगोलिक विविधता निम्न लोकगीतों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है-

बंगाल के बाऊल गीत,कश्मीर के लोकगीत,महाराष्ट्र के ओवी गीत, राजस्थान की मांड

भारत के प्रत्येक क्षेत्र की प्राकृतिक भौगोलिक स्थितियाँ वहाँ के लोकगीतों में जीवंत दिखाई देती हैं।

ऋतु और लोकगीतों का विश्लेषण

भारतीय लोकगीतों में ऋतु और प्रकृति एक-दूसरे के अभिन्न अंग हैं। हर ऋतु का लोकगीत न केवल मौसम की स्थिति को दर्शाता है, बल्कि उस समय के सामाजिक, भावनात्मक और सांस्कृतिक पहलुओं को भी उजागर करता है।

"जन जीवन का तो जन्म से लेकर मरण तक कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं, जो गीतों से दूर हो। धरती पर निरन्तर लोकगीत झूमते रहते हैं। कुछ ऋतुएं तो ऐसी हैं, जिनमें रात दिन गीतों की बहार रहती है. जैसे सावन भर कजलियों गाई जाती है।"[9]

भारतवर्ष में छः ऋतुओं का आगमन होता है-1. ग्रीष्म 2. वर्षा 3. शरद 4. हेमन्त 5. शिशिर तथा 6. बसन्त ऋतु। ऋतु गीतों का उद्देश्य मुख्य रूप से ऋतुओं और मानव-जीवन के स्वर को एकाकार करना है। विभिन्न ऋतुओं में गाए जाने वाले इन ऋतु गीतों के बहुत से प्रकार प्रचलित है। जिनमें मुख्य रूप से 1. कजरी, 2. चैती 3. बारहमासा 4. होली अथवा फगुवा

1. सावन और कजरी

"कजरी -सावन भादों के मास में और मुख्य रूप से वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले गीतों में कजरी एक प्रसिद्ध लोक गीत है। इसका शुद्ध रूप "कज्जली' अर्थात् मेघ है।"[10]

सावन का महीना भारतीय ग्रामीण जीवन में उल्लास और प्रतीक्षा का प्रतीक है। कजरी गीतों में बारिश की बूँदें, हरियाली और झूलों की छवि प्रमुख रूप से दिखाई देती है। उदाहरण के लिए:

"घेरि-घेरि आई सावन के बदरिया ना।

पानी बरसै बड़ी जोर, सूझे नाहीं चारों ओर,

जिया कांपै मोरा, चमकेला बिजुरिया ना।

जबसे गइले हो बिदेस, भेजे एको ना संदेश,

काहे लीनी नाही हमरी खबरिया ना।"[11]

इस कजरी की पंक्ति **"घेरी-घेरी आई सावन की बदरिया ना"** में वर्षा ऋतु की घनघोर घटाओं का चित्रण है।यह बादल केवल मौसम का दृश्य नहीं, बल्कि स्त्री-मन की व्याकुलता और मिलन-आकांक्षा का प्रतीक हैं।नायिका बादलों को देखकर अपने प्रिय की याद और विरह की पीड़ा को और गहराई से महसूस करती है।गीत प्रकृति के बदलते रूपों में मानव-हृदय की भावनाओं को पिरोकर वर्षा और प्रेम का मानवीय संगम प्रस्तुत करता है।

2. चैत्र और चैती

चैती गीत चैत्र माह की नई उमंग और जीवन के नूतन चक्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। आम के बौर और कोयल की कूक नई जीवनधारा और उत्साह का संकेत है।

चैत मासे चुनरी रंगइबो हो रामा पिया घर अइहे।

प्रीत रंगे लहंगा, सबुज रंग चोलिया

लाल रंगे चुनरी रंगइबो हो रामा पिया घर अइहे।।

चैत्र मास में चुनरी रंगाई का दृश्य नयेपन और उल्लास का प्रतीक है।नायिका मन में पिया के घर आने की आतुर प्रतीक्षा कर रही है।गीत साधारण शब्दों में सजने-संवरने और प्रेम मिलन की आकांक्षा व्यक्त करता है।यह ऋतु, रंग और प्रेम के मिलन से उपजे जीवन की ताजगी और उम्मीद को दर्शाता है।

3. होली और फगुआ

वसंत ऋतु का उत्सव फगुआ गीतों में झूलों, आम के बौर और रंगों के माध्यम से प्रकट होता है।"बसन्त ऋतु के आगमन पर बसन्तोत्सव मनाने का प्रचलन है। इसी अवसर पर 'होली' का गाना प्रारम्भ हो जाता है। इसे 'फगुआ' अथवा 'फाग' भी कहा जाता है। फागुनमास में इसको गाते हैं। यह गीत श्रृंगार रस प्रधान होते हैं। हर्षोल्लास के साथ सामूहिक रूप से इन गीतों को गाया जाता है। होली त्यौहार पर अनेक कथाएँ प्रचलित हैं; जिनका वर्णन भी गीतों में मिलता है। यह परम आनंद व मंगलमय अवसर होता है। इन गीतों में झाँझ, ढोलक, मंजीरा, आदि वाद्यों का प्रयोग होता है।"[12] राम और जानकी के होली खेलने का एक वर्णन इस प्रकार है-

'खेलई अवधपुर होरी हो,

हाँ खेलई अवधपुर होरी।

दशरथ के सुत, जनक नन्दिनी,

रंग ते खेलई जनक नन्दिनी

रंग से हां, हां रंग से खेलई रघुबीरा।

भाजत आमई जनक नान्दिनी,

भाजत हां, दो भाजत जामई रघुबीरा ।"[13]

4. बारहमासा

जिन गीतों में बारहों महीनों का वर्णन हो तो उसे 'बारहमासा' कहा जाएगा।इन गीतों में प्रकृति प्रेम और पीड़ा का संवेदनात्मक माध्यम बन जाती है।

" सभी मासों की प्रकृति का वर्णन होने के कारण इसका नाम बारहमासा पड़ा। अतः यह सभी ऋतुओं में गाया जा सकता है। यह गीत वर्षा ऋतु प्रधान होता है। बारहों मास में ऋतु प्रभाव से जैसी मनोभावों की अनुभूति होती है उसी की अभिव्यक्ति विरहणी इन गीतों में करती है। इनमें श्रृंगार रस प्रधान होता है। इसका प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। जायसी ने नागमती के विरह वर्णन में बारहमासा का प्रयोग किया है।"[14] एक उदाहरण इस प्रकार है-

"बालम बिनु सूनी सेजरिया।

चढ़त अषाढ़ पपिहरा बोलइ, सावन बोलइ बन मोर ।

भादों बिजुरी चमके चमके-चमके,घर पिया न मोर ।

पिया, तोरी जोहउँ उगरिया।

बालम बिनु सूनी सेजरिया।"[15]

यहाँ प्राकृतिक घटनाएँ केवल पृष्ठभूमि नहीं हैं; वे नायिका की आंतरिक पीड़ा और भावनात्मक संघर्ष को स्पष्ट करती हैं।

विश्लेषणात्मक दृष्टि

लोकगीतों में प्रकृति केवल सौंदर्य का दृश्य नहीं, बल्कि भावनाओं, सामाजिक जीवन और दार्शनिक समझ का माध्यम है। ऋतु-परिवर्तन मानवीय जीवन के उतार-चढ़ाव का प्रतीक बनता है। वर्षा, नदियाँ और सूर्य मानव संवेदनाओं और कर्मों को अर्थ देते हैं, वहीं पक्षी और वृक्ष प्रेम, प्रतीक्षा और जीवन की गहरी अनुभूतियों का रूपक बन जाते हैं।इस दृष्टि से लोकगीतों में प्राकृतिक घटनाओं और जीव-जंतुओं का चयन केवल सजावट नहीं है, बल्कि यह गहरी संवेदनात्मक और दार्शनिक समझ का परिणाम है।

नदियाँ, वृक्ष, पशु-पक्षी और महिला जीवन में प्रकृति

भारतीय लोकगीतों में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि जीवन की संवेदनाओं, सांस्कृतिक अनुभवों और सामाजिक रीतियों का अभिन्न हिस्सा है। इसमें नदियाँ, वृक्ष, पशु-पक्षी और स्त्री जीवन विशेष महत्व रखते हैं।

1. नदियाँ: जीवन और संवेदना का प्रवाह-

लोकगीतों में गंगा, यमुना, सरयू जैसी नदियाँ केवल जलधारा नहीं, बल्कि जीवनदायिनी शक्ति और माँ के रूप में चित्रित होती हैं। ये गीत कभी पवित्रता और शांति का भाव जगाते हैं तो कभी विरह और प्रतीक्षा का प्रतीक बनते हैं। नदियों से जुड़ी गतिविधियाँ लोकजीवन की दिनचर्या को भी गहराई से दर्शाती हैं।

2. वृक्ष: संस्कृति और भावना के प्रतीक

नीम सुरक्षा और मातृत्व का, आम प्रेम और मिलन का, पलाश उल्लास का और तुलसी पारिवारिक आस्था का प्रतीक है। विवाह और उत्सवों में वृक्षों का उल्लेख यह दर्शाता है कि लोकसमाज उन्हें केवल प्रकृति नहीं बल्कि जीवन और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा मानता है।

3. पशु-पक्षी: भावनाओं के वाहक

कोयल विरह की ध्वनि है, पपीहा प्रिय की पुकार, और मोर सावन व प्रेम का प्रतीक। इनकी आवाज़ और उपस्थिति लोकजीवन की प्राकृतिक लय से जुड़ी है। बैल, ऊँट और घोड़े भी लोकगीतों में श्रम, यात्रा और जीविका का प्रतीक बनकर आते हैं।

4. स्त्री-जीवन और प्रकृति

ग्रामीण स्त्रियों के गीतों में प्रकृति संवेदनाओं का सहचर है। विवाह में आम की डाल पर झूला हो या सावन के फूलों की छटा—ये सब स्त्री के उल्लास को व्यक्त करते हैं। विरह गीतों में मेघ और नदियाँ प्रिय की अनुपस्थिति का रूपक बन जाते हैं। इस तरह स्त्री जीवन और प्रकृति का गहरा भावनात्मक रिश्ता लोकगीतों में झलकता है।स्त्रियों के लोकगीत यह स्पष्ट करते हैं कि प्रकृति केवल दृश्य नहीं बल्कि भावनाओं और संवेदनाओं का माध्यम है।

5. पर्यावरणीय दृष्टिकोण

लोकगीत केवल भावनाओं का दस्तावेज़ नहीं, बल्कि पर्यावरणीय चेतना के संवाहक भी हैं। नदियों की पूजा जल संरक्षण की परंपरा है, वृक्षों का सम्मान जीवन रक्षा का भाव जगाता है, और ऋतु-गीत मौसम व जलवायु का सहज लेखा-जोखा रखते हैं। यह हमें याद दिलाते हैं कि मनुष्य और प्रकृति का अस्तित्व एक-दूसरे से गहराई से जुड़ा है।

हम देखते हैं कि लोकगीत सिर्फ धुन और शब्द नहीं हैं; ये जीवन और प्रकृति के बीच एक नाजुक संवाद हैं। इन गीतों में स्त्रियों की भावनाएँ, उनके सुख-दुःख और आशाएँ प्रकट होती हैं, और प्रकृति—नदियाँ, वृक्ष, पक्षी, ऋतु परिवर्तन—मानव जीवन की लय को प्रतिबिंबित करती है। खेतों में काम करते समय, त्योहारों और अनुष्ठानों में सामूहिक गानों के माध्यम से ये गीत केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज में एकता और समुदाय की पहचान का सूत्र भी बुनते हैं। कजरी, सोहर, मांड, बाऊल जैसे क्षेत्रीय गीत हमारी सांस्कृतिक विविधता की रंगत को उजागर करते हैं, और जल, वृक्ष और प्राकृतिक संसाधनों की चेतना भी इनमें छिपी रहती है।

आधुनिक युग में डिजिटल मीडिया और फ़िल्मी संगीत ने लोकगीतों के स्वरूप को बदल तो दिया है, लेकिन उनकी भावनात्मक गहराई और सांस्कृतिक शक्ति कम नहीं हुई है। महोत्सव, शोध, शैक्षिक कार्यक्रम और ऑनलाइन मंच इन गीतों को नई पीढ़ी तक पहुँचाने का काम कर रहे हैं। लोकगीत केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि आज भी भावनाओं, संस्कृति और पर्यावरण की समझ का जीवंत माध्यम हैं। इन्हें संरक्षित करके और साझा करके हम न केवल अपनी सांस्कृतिक पहचान को बचाते हैं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक एकता और प्रकृति के संतुलन के मार्गदर्शक भी बनाए रखते हैं।

निष्कर्ष

भारतीय लोकगीत केवल गीत नहीं, बल्कि जीवन और प्रकृति का संवाद हैं। नदियाँ, वृक्ष, पक्षी और ऋतु-परिवर्तन केवल दृश्य नहीं, बल्कि मानव भावनाओं और सामाजिक संवेदनाओं के प्रतीक हैं। ये गीत हमें यह याद दिलाते हैं कि मानव और प्रकृति का रिश्ता केवल उपयोग का नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व, संवेदनशीलता और सामंजस्य का है। लोकगीत हमारी सांस्कृतिक धरोहर होने के साथ-साथ पर्यावरणीय चेतना और सामाजिक एकता का जीवंत संदेश भी देते हैं। यही कारण है कि वे आज भी उतने ही प्रेरणादायक और प्रासंगिक हैं जितने सदियों पहले थे।

संदर्भ सूची

धनकर रीता हरियाणा का लोक संगीत, पृष्ठ-01 राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली, 1997
शर्मा प्रो. स्वतन्त्र, सौन्दर्य रस एवं संगीत,पृष्ठ-325, अनुभव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद
वही पृष्ठ-324
परमार श्याम लेख –'मध्य भारत का लोक संगीत', संगीत पत्रिका (लोक संगीत अंक) पृष्ठ-62, संगीत कार्यालय हाथरस जनवरी 1966
कुमार सुनील लेख-'संगीत और वर्ण व्यवस्था',संगीत पत्रिका (लोक संगीत अंक) पृष्ठ-36, संगीत कार्यालय हाथरस जनवरी 1966
परमार श्याम लेख- 'मध्य भारत का लोक संगीत', संगीत पत्रिका (लोक संगीत अंक) पृष्ठ-12 संगीत कार्यालय हाथरस जनवरी 1966
मुखर्जी डॉ. प्रिया, संगीत कलोपनिषद् मालिका,पृष्ठ- 13, कला प्रकाशन वाराणसी 2019
जोशी डॉ गीता, सांस्कारिक लोकगीतों का शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ-21, सत्यम् पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 2011
मिश्र चन्द्रशेखर, लेख-'फागुन के लोक छंद',निबन्ध संगीत,पृष्ठ-81,संगीत कार्यालय हाथरस 2003
सिंह डॉ संजय कुमार, भोजपुरी लोक संस्कृति एवं हिन्दुस्तानी संगीत,पृष्ठ-133, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली 2010
मिश्र राजेन्द्र, संगीत पत्रिका (लोक संगीत अंक) पृष्ठ-212 संगीत कार्यालय हाथरस , 1966
सिंह डॉ संजय कुमार, भोजपुरी लोक संस्कृति एवं हिन्दुस्तानी संगीत,पृष्ठ-140, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली 2010
उपाध्याय डॉ० कृष्णदेव, हिन्दी प्रदेश के लोकगीत, पृष्ठ-223 इलाहाबाद। साहित्य भवन 1990
सिंह डॉ संजय कुमार, भोजपुरी लोक संस्कृति एवं हिन्दुस्तानी संगीत,पृष्ठ-139, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली 2010
मिश्र चन्द्रशेखर, लेख-'फागुन के लोक छंद', संगीत पत्रिका,पृष्ठ-27,28 संगीत कार्यालय हाथरस मार्च 1970